जैनागमों में श्रावक-धर्म

स्वभाव च्युत आत्मा को जो पुन: स्वभाव-स्थित करे और गिरते हुए को स्वभाव में धारण करे। वैसे आचार-विचार को शास्त्रीय भाषा में धर्म कहते हैं। "एगे धम्मे" अर्थात् धारण करने के स्वभाव से वह एक है। स्थित-भेद, क्षेत्र-भेद और पात्र-भेद की अपेक्षा मूल में वह एक होकर भी, जैसे पानी विविध नाम और रूपों से पहचाना जाता है, वैसे धर्म भी अधिकारी-भेद और साधना-भेद से अनेक प्रकार का कहा जाता है। स्थानांग सूत्र के दूसरे स्थान में धर्म के श्रुतधर्म और चारित्र धर्म के रूप से दो प्रकार बतलाये हैं, फिर चारित्र धर्म को भी आगार धर्म और अणगार धर्म के भेद से विभक्त किया है। आगार का अर्थ है घर। घर के प्रपंचमय वातावरण में रहकर जो धर्म-साधना की जाय, उसे आगार धर्म और घर के सम्पूर्ण आरम्भ-परिग्रह से विरत होकर जो धर्म-साधना की जाय उसको अणगार धर्म कहा गया है। आगार धर्म का ही दूसरा नाम श्रावक धर्म है। त्यागी-श्रमणों की उपासना करने से गृहस्थ को श्रमणोपासक या उपासक भी कहा गया है।

दशाश्रुतस्कंध में सम्यग्दर्शनी गृहस्थ को व्रत-नियम के अभाव में दर्शन श्रावक कहा है। आचार्य कहते हैं कि जो व्रत-नियम रहित होकर भी जिन शासन की उन्नति के लिए सदा तत्पर रहता है और चतुर्विध संघ की भक्ति करता है, वह अविरत-सम्यग् दृष्टि भी प्रभावक श्रावक होता है, जैसा कि कहा है—

> जो अविरओवि संघे, भत्तितित्थुन्नइं सया कुणई।
> अविरय-सम्मदिट्ठी, पभावगो सावगो सोऽवि ॥

आगमों में प्राय: बारहव्रतधारी श्रावकों का ही निर्देश मिलता है। एक आदि व्रतधारी देशविरत होते हैं, पर आगमों में वैसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। उस समय में राज्य-शासन के चालक चेटक और उदायी जैसे राजा और सुबाहु जैसे राजकुमारों के भी द्वादश व्रतों के धारण का ही उल्लेख आता है। परन्तु पूर्वाचार्यों ने श्रावक धर्म की भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ऐसी तीन श्रेणियाँ निर्धारित की हैं।

जघन्य श्रावक :

जघन्य श्रावक के लिए तीन बातें आवश्यक बतलाई हैं, जो निम्न प्रकार हैं :

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१. मारने की भावना से प्रेरित होकर किसी त्रस जीव की हत्या नहीं करना ।

२. मद्य-मांस का त्यागी होना ।

३. नमस्कार मन्त्र पर पूर्ण श्रद्धा रखना ।

कहा भी है—आउट्टि थूल-हिंसाई, मज्ज-मंसाइ चाइओ ।
जहन्नओ सावगो होइ, जो नमुक्कार धारओ ।।

मध्यम श्रावक :

मध्यम श्रावक की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

१. देव, गुरु, धर्म पर श्रद्धा रखता हुआ जो बड़ी हिंसा नहीं करता ।

२. मद्य मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों का त्यागी होकर जो धर्म-योग्य लज्जालुता, दयालुता, गंभीरता और सहिष्णुता आदि गुण युक्त हो ।

३. जो प्रतिदिन षट्कर्म का साधन करता और द्वादश व्रतों का पालन करता हो । कहा गया है—

देवार्चा गुरु-शुश्रुषा स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
दान चतिगृहस्थाना षट् कर्माणि दिने दिने ।।

षट्कर्म : छह दैनिक कर्म इस प्रकार हैं—

१. **देव भक्ति :**

वीतराग और सर्वज्ञ देवाधिदेव अरिहंत ही श्रावक के आराध्य, देव हैं ।

श्रावक की प्रतिज्ञा होती है—"अरिहंतो महदेवो" अर्वात अरिहंत मेरे उपास्य देव हैं, उनके लिए कहा गया है—"दसट्ठ दोसा न जस्स सो देवो" जिनमें दस और आठ (अट्ठारह) दूषण नहीं हैं, वे ही लोकोत्तर पक्ष में आराध्य-देव हैं ।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मों के क्षय से जिनमें अट्ठारह दोष नहीं होते, वे अरिहंत कहलाते हैं । अठारह दोष निम्न प्रकार हैं—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(१) अज्ञान (२) निद्रा (३) मिथ्यात्व (४) अविरति (५) राग (६) द्वेष (७) हास्य (८) रति (९) अरति (१०) भय (११) शोक (१२) जुगुप्सा (१३) काम (१४) दानान्तराय (१५) लाभान्तराय (१६) भोगान्तराय (१७) उपभोगान्तराय और (१८) वीर्यान्तराय।

कुछ आचार्य अठारह दोषों में 'कवलाहार' को एक मानकर केवली भगवान् के 'कवलाहार' नहीं मानते, पर आहार का सम्बन्ध शरीर से है, वह 'गमनागमन' और श्वास की तरह शरीर-धर्म होने से आत्म गुण का घातक नहीं बनता, अतः यहाँ उसका ग्रहण नहीं किया गया। इस प्रकार अठारह दोष-रहित, बारह गुण सहित, अरिहंत देव ही आराध्य हैं। देव त्यागी, विरागी एवं वीतराग हैं, अतः त्याग, विराग और वीतराग भाव की ओर बढ़ना एवं तदनुकूल करणी करना ही उनकी सच्ची भक्ति हो सकती है, जैसा कि सन्तों ने कहा है—

ध्यान धूपं मनः पुष्पं, पंचेन्द्रिय-हुताशनं।
क्षमा जाप संतोष पूजा, पूजो देव निरंजनं॥

२. गुरु सेवा :

दूसरा कर्म गुरुसेवा है। "जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो" के अनुसार श्रावक, आरंभ-परिग्रह के त्यागी, सम्यक्ज्ञानी, मुनि एवं महासतियों को ही गुरु मानता है। सच्चे संत छोटी-बड़ी किसी प्रकार की हिंसा करते नहीं, करवाते नहीं, करने वाले को भला भी समझते नहीं। इस प्रकार वे झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के भी तीन करण, तीन योग से सर्वथा त्यागी होते हैं। श्रावक प्रतिदिन ऐसे गुरुजनों के दर्शन व वंदन कर उपदेश ग्रहण करते हैं और उनके संयम गुण के रक्षण व पोषण हित वस्त्र, पात्र, आहार, औषध एवं शास्त्रादि दान से सेवा-भक्ति करते हैं।

जैसा कि उपासकदशांग सूत्र में आनन्द श्रावक ने कहा, "कप्पइ में समणे निग्गंथे फासुय-एसणिज्जेणं असण, पाण, खाइम, साइम, वत्थ, पडिग्गह, कंवल, पाय पुंच्छणेणं, पीढ, फलग, सिज्जा, संथारएणं, ओसहभेसज्जेणं, पडिलाभेमाणस्स विहरित्तए" अर्थात् मुझे श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक और निर्दोष अशनादि चारों आहार, वस्त्र, पात्र, कंवल, पादपोंछन, पीठ, फलक, शैया, संस्तारक और औषध-भैषज से प्रतिलाभ देते हुए विचरण करना योग्य है। अन्य तीर्थ के देव या अन्य-तीर्थ-परिगृहीत चैत्य का वंदन-नमस्कार करना योग्य नहीं, वैसे ही उनके पहले बिना बतलाये उनसे आलाप-संलाप करना तथा उनको (गुरुओं को) अशनादि देना नहीं कल्पता।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

३. स्वाध्याय :

सद्गुरु का संयोग सर्वदा नहीं मिलता और मिलने पर भी उनकी शिक्षा का लाभ बिना स्वाध्याय के नहीं मिलता। अतः गुरु-सेवा के पश्चात् स्वाध्याय कहा गया है। श्रावक गुरु की वाणी सुनकर चिंतन, मनन और प्रश्नोत्तर द्वारा ज्ञान को हृदयंगम करता है। शास्त्र में वर्णित श्रावक के लिए 'निग्रन्थ प्रवचन' का 'कोविद' विशेषण दिया गया है। स्वाध्याय के द्वारा ही शास्त्र का कोविद-पंडित हो सकता है। अतः प्रत्येक श्रावक-श्राविका को वाचना, पृच्छा, पर्यटना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा द्वारा धर्मशास्त्र का स्वाध्याय करना चाहिये। सद्गुरु की अनुपस्थिति में उनके प्रवचनों का स्वाध्याय गुरु सेवा का आनन्द प्रदान करता है। कहा भी है—"स्वाध्याय बिना घर सूना है, मन सूना है सद्ज्ञान बिना।"

४. संयम :

जितेन्द्रिय, संयमशील पुरुष का ही स्वाध्याय शोभास्पद होता है। अतः स्वाध्याय के बाद चतुर्थ कर्म संयम बतलाया है। श्रावक को प्रतिदिन कुछ काल के लिए संयम का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास-बल से चिरकाल संचित भी काम, क्रोध और लोभ का प्रभाव कम होता है और उपशम भाव की वृद्धि होती है। अतः श्रावक को पाप से बचने के लिए प्रतिदिन संयम का साधन करना चाहिए।

५. तप :

गृहस्थ को संयम की तरह प्रतिदिन कुछ न कुछ तप भी अवश्य करना चाहिए। तप-साधन से मनुष्य में सहिष्णुता उत्पन्न होती है। अतः आत्म-शुद्धि के लिए अनशन, उणोदरी, रसपरित्याग आदि में से कोई भी तप करना आवश्यक है। तप से इन्द्रियों के विषय क्षीण होते हैं और परदुःख में समवेदना जागृत होती है। रात्रि-भोजन और व्यसन का त्याग भी तप का अंग है। आवश्यकताओं से दबा हुआ गृहस्थ तप द्वारा शान्ति-लाभ प्राप्त करता है।

६. दान :

श्रावक-जीवन के मुख्य गुण दान और शील हैं। श्रावक तप की तरह अपने न्यायोपार्जित वित्त का प्रतिदिन दान करना भी आवश्यक मानता है, जैसे शरीर विभिन्न प्रकार के पकवान ग्रहण कर फिर मल रूप से कुछ विसर्जन भी करता है। स्वस्थ शरीर की तरह श्रावक भी प्रतिदिन प्राप्त द्रव्य का देश, काल एवं पात्रानुसार उचित वितरण कर दान धर्म की आराधना करता है। पूणिया श्रावक के लिए कहा जाता है कि उसने धर्मी भाई को प्रीतिदान करने के लिए

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एकान्तर व्रत करना प्रारम्भ किया। पूणी के धन्धे में तो घर का खर्च मात्र चलता था। अतः वह तपस्या से अपना खाना बचा कर स्वधर्मी बन्धु की सेवा करता था।

मध्यम श्रावक षट्कर्म की साधना के समान द्वादश व्रत का भी पालन करता है।

द्वादश व्रत :

आनन्द श्रावक ने भगवान् महावीर का उपदेश श्रवण कर प्रार्थना की—प्रभो! जैसे आपके पास बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, मांडवी, कोटुम्बी और सार्थवाह आदि मुण्डित होकर अणगार धर्म की प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं, वैसे मैं अणगार धर्म ग्रहण करने में समर्थ नहीं हूँ। मैं आपके पास पाँच अणुव्रत, सात शिक्षा व्रत रूप द्वादश विध गृहस्थ धर्म को ग्रहण करूँगा। मालूम होता है प्राचीन समय के श्रावक प्रारम्भ से ही सम्यग्दर्शन पूर्वक बारह व्रत ग्रहण करते थे। वे बीच के जघन्य मार्ग में अटके नहीं रहते थे। आनन्द ने जिन श्रावक व्रतों को स्वीकार किया था, उनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

१. **स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत** : इस व्रत के अनुसार गृहस्थ त्रस जीवों की संकल्प पूर्वक हिंसा करने व करवाने का दो करण, तीन योग से त्याग करता है। चलते-फिरते जीवों की जीवन भर मन, वचन, काय से दुर्भावनावश हिंसा करनी नहीं, करवानी नहीं।

२. **स्थूल मृषावाद विरमण व्रत** : इसके अनुसार श्रावक स्थूल झूठ का त्याग करता है। दूसरे का जानी माली नुकसान हो ऐसा झूठ मन, वचन, काय से ज्ञानपूर्वक बोलना नहीं। बड़ा झूठ पाँच प्रकार का है जैसे—(१) कन्या सम्बन्धी, (२) गोआदि पशु शम्बन्धी, (३) भूमि सम्बन्धी, (४) जमा रकम या धरोहर दबाने सम्बन्धी तथा (५) झूठी साक्षी या मिथ्या लेख सम्बन्धी। श्रावक को इनका त्याग करना होता है, तभी वह समाज, राष्ट्र और परिवार में विश्वासपात्र माना जाता है।

३. **स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत** : इसके अनुसार श्रावक बड़ी चोरी का त्याग करता है। वह स्वयं चोरी नहीं करता, जानकर चोरी का माल नहीं लेता, एक देश का माल दूसरे देश में बिना अनुमति नहीं भेजता और बिना अनुमति के राज्य-सीमा का अतिक्रमण नहीं करता। कम ज्यादा तोल माप रखना और माल में मिलावट कर ग्राहक को धोखा देने में, श्रावक अपने अचौर्य व्रत का दूषण मानता है। इस तरह वह चोरी का दो करण तीन योग से त्याग करता है। "जाइजो लाख रहीजो साख" के अनुसार वह इतना विश्वस्त होता है कि यदि

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

राज-भण्डार में भी चला जाय, तो अविश्वास का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यही अचौर्य व्रत की महिमा है।

४. **स्वदार संतोष परदार विवर्जन व्रत** : इसके अनुसार गृहस्थ परस्त्री का त्यागी होता है। पाणिगृहीत स्त्री और पुरुष अपने क्षेत्र में मर्यादाशील होते हैं। वह भोग को आत्मिक दुर्बलता समझकर शनैः शनैः अभ्यासबल से काम वासना पर विजय प्राप्त करना चाहता है। यह यथाशक्य ऐसे आहार, विहार और वातावरण में रहना पसंद करता है, जहाँ वासना को प्रोत्साहन नहीं मिलता है। हस्त-मैथुन, अनंग-क्रीड़ा, अश्लील नृत्य गान और नग्न चित्रपटों से रुचि रखना इस व्रत के दूषण माने गये हैं। श्रावक नसबंदी जैसे कृत्रिम उपयोगों से संतति-निरोध को इष्ट नहीं मानता। वह इन्द्रिय-संयम द्वारा गर्भ-निरोध को ही स्वपरहितकारी मानता है।

५. **इच्छा परिमाण व्रत** : इस व्रत में श्रावक हिरण्य-सुवर्ण-भूमि और पशुधन का परिमाण कर तृष्णा की बढ़ती आग को घटाता है। वह धन को शरीर की भौतिक आवश्यकता पूर्ति का साधन मात्र मानता है। जीवन का साध्य धन नहीं, धर्म है। अतः धनार्जन में धर्म और नीति को भूलकर तन मन से अस्वस्थ हो जाना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं कहा जाता। वृद्ध और दुर्बल को लाठी की तरह गृहस्थ को धन का सहारा है। लाठी चलने में मदद के लिए है, पर वह पैरों में टकराने लगे तो कुशल पथिक उसे वहीं छोड़ देगा। श्रावक इसी भावना से परिग्रह का परिमाण करता है। आनन्द ने भगवान के पास हिरण्य सुवर्ण, चतुष्पद और भूमि का परिमाण किया था। वर्तमान में जो सम्पदा थी, उन्होंने उसको सीमित कर इच्छा पर नियंत्रण किया। परिणाम स्वरूप करोड़ों की संपदा होकर भी उनका मन शांत था। समय पाकर उन्होंने प्राप्त सम्पदा से किनारा कर एकान्त साधन किया और निराकुल भाव से अवधिज्ञान की ज्योति प्राप्त की। इस प्रकार परिग्रह का परिमाण करना इस व्रत का लक्ष्य है।

६. **दिग्व्रत** : अहिंसादि मूल व्रतों की रक्षा एवं पुष्टि के लिए दिग्व्रत, भोगोपभोग परिमाण और सामायिक आदि शिक्षाव्रतों की आवश्यकता होती है। जितना जिसका देश-देशान्तर में भ्रमण होगा, उतना ही उसका आरम्भ-परिग्रह भी बढ़ता रहेगा अतः इस व्रत में गृहस्थ के भ्रमण को सीमित किया गया है। सारंभी गृहस्थ जहाँ भी पहुँचेगा, आरंभ का क्षेत्र भी उतना ही विस्तृत होगा। अतः श्रावक को पूर्व आदि छहों दिशा में आवश्यकतानुसार क्षेत्र रखकर आगे का भ्रमण छोड़ना है। इस प्रकार दिशा-परिमाण लालसाओं को कम करने का प्राथमिक प्रयोग है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

७. **उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत** : मनुष्य हिंसा, असत्य आदि पाप आवश्यकता और भोग्य सामग्री के लिए ही करता है। जब तक शारीरिक आवश्यकता पर अंकुश नहीं किया जाता, अहिंसा एवं अपरिग्रह का पालन संभव नहीं। अतः इस व्रत में खान-पान-स्नान-यानादि सामग्रियों को सीमित करना आवश्यक बतलाया है। श्रावक आनन्द ने दातुन से लेकर द्रव्य तक २६ बोलों की मर्यादा की और महारम्भ के १५ खरकर्म-हिंसक धंधों का भी त्याग किया था। आवश्यकता वृद्धि के साथ मनुष्य का खर्च बढ़ेगा और उसकी पूर्ति के लिए उसे आरम्भ-परिग्रह भी बढ़ाना होगा। अतः कहा गया कि भोगोपभोग के पदार्थों की मर्यादा करो। मर्यादा करने से जीवन हल्का होगा और आरम्भ-परिग्रह भी सीमित रहेगा।

८. **अनर्थदण्ड विरमण व्रत** : हिंसादि पापों को घटाने के लिए जैसे आवश्यकताओं का परिमाण करना आवश्यक है, वैसे व्यर्थ–बिना खास प्रयोजन के होने वाले दोषों से बचना भी आवश्यक है। अज्ञानी मानव कितने ही पाप ना समझी से करता रहता है। शास्त्र में अनर्थ दण्ड के चार कारण बताये गये हैं। (१) अपध्यान (२) प्रमाद (३) हिंस्रप्रदान और (४) मिथ्याउपदेश। बिना प्रयोजन आर्त-रौद्र के बुरे विचार करना, द्रोह करना, भविष्य की व्यर्थ चिन्ता करना, नाच, सरकस एवं नशा से प्रमाद बढ़ाना, हिंसाकारी अस्त्र-शस्त्र अग्नि विष आदि अज्ञात व्यक्ति को देना, पापकारी उपदेश देना, मेंढ़े, तीतर आदि लड़ाके खुश होना, तेल, पानी आदि खुले रखना, बिना प्रयोजन हरी तोड़ना या दूब आदि पर चलना अनर्थ दण्ड है। श्रमणोपासक को बिना प्रयोजन की हिंसादि-प्रवृत्ति से बचना नितांत आवश्यक है।

९. **सामायिक व्रत** : अनर्थ के कारणभूत राग, द्वेष एवं प्रमाद को घटाने के लिए समता की साधना आवश्यक है। सामायिक में सम्पूर्ण पापों को त्यागकर समभाव को प्राप्त करने की साधना की जाती है। सामायिक के समय श्रावक श्रमण की तरह निष्पाप जीवन वाला होता है। उस समय आरम्भ-परिग्रह का सम्पूर्ण त्याग हो जाता है। अतः गृहस्थ को बार-बार सामायिक का अभ्यास करना चाहिए, जैसा कि कहा है—

सामाइयम्मिउकए समणी इव सावओ हवई जम्हा।
एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा [वि. आ.]

प्रतिदिन प्रातःकाल गृहस्थ को द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव-शुद्धि के साथ सम्पूर्ण पापों का परित्याग कर स्थिर आसन से मुहूर्त भर सामायिक का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। इससे तन, मन और वाणी में स्थिरता प्राप्त होती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१०. **देशावकाशिकव्रत** : जीवन में आरम्भ-परिग्रह का संकोच करने और पूर्वगृहीत व्रतों को परिपुष्ट करने के लिए दैनिक व्रत ग्रहण को देशावकाशिक कहते हैं। इसमें गृहस्थ हिंसादि आश्रवों का द्रव्य क्षेत्र काल की मर्यादा से प्रतिदिन संकोच करता है। प्रतिदिन अभ्यास करने से जीवन संयत और नियमित बनता है और वृत्तियाँ स्वाधीन बनती हैं।

११. **पौषधोपवास व्रत** : दैनिक अभ्यास को अधिक बलवान बनाने के लिए गृहस्थ पर्वतिथि में पौषधोपवास की साधना करता है। इसमें आहार त्याग के साथ शरीर-सत्कार और हिंसादि पाप कार्यों का भी अहोरात्र के लिए दो करण तीन योग से त्याग होता है। पौषध, व्रती हिंसादि पाप कर्मों को मन, वाणी और कार्य से स्वयं करता नहीं और करवाता नहीं। इस दिन ज्ञान-ध्यान से आत्मा को पुष्ट करना मुख्य लक्ष्य होता है। प्राचीनकाल के श्रावक अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को प्रतिपूर्ण पौषध का सम्यक् पालन करते थे। जैसा कि भगवती सूत्र के प्रकरण में कहा है—चाउदसट्ठ मुदिट्ठ पुण्णमासिणीसु पडिपुण्ण पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरन्ति। श्रावक चतुर्दशी, अष्टमी अमावस्या और पूर्णिमा में प्रतिपूर्ण पौषध का सम्यक् पालन करने विचरते हैं। दिन-रात आरम्भ परिग्रह में फंसा रहने वाला गृहस्थ जब पूरे दिन रात हिंसा, झूठ, परिग्रह से बचकर चल लेता है, तो उसे विश्वास हो जाता है कि हिंसा, झूठ, कुशील और क्रोध आदि को छोड़कर जीवन शांति से चलाया जा सकता है। पौषधोपवास श्रमण-जीवन की साधना का पूर्व रूप है। श्रावक को अनुकूलतानुसार हर माह में पौषध व्रत की साधना अवश्य करनी चाहिए।

१२. **अतिथिसंविभाग व्रत** : इस व्रत के द्वारा श्रावक भोजन के समय श्रमण-निग्रंथों का संविभाग करता है। शास्त्र में उसके लिए 'ऊसियफलिहा अवंगुय दुबारे' कहा है, अर्थात् उसके द्वार की आगल उठी रहती है। श्रावक के गृहद्वार खुले रहते हैं। साधु साध्वी का संयोग मिलने पर निर्दोष आहार-पानी, वस्त्र, पात्र और औषध आदि से उनको प्रतिलाभ देना श्रावक अपना आवश्यक कर्तव्य समझता है। वह मन, वचन, काय की शुद्धि से विधि पूर्वक विशुद्ध आहारादि प्रतिलाभित कर अपने आपको कृतकृत्य मानता है।

साधु के अभाव में देश विरति श्रावक और सम्यक्दृष्टि भी सत्पात्र माना गया है। दान गृहस्थ का दैनिक कर्म है। वह यथायोग्य गृहागत हर एक का सत्कार करता है। भगवती सूत्र में 'विच्छड्डिय पउर भत्तपाणे' विशेषण से गृहस्थ के यहाँ दीन-हीन, भूखे प्यासे पशु-पक्षी और मानव को प्रचुर भात-पानी डाला जाना कहा गया है। वह अनुकम्पा दान को पुण्यजनक मानता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट श्रावक :

वैदिक परम्परा में जैसे गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थ का विधान है। जैन परम्परा में ऐसा ही व्रती जीवन के बाद पडिमाधारी साधन का उल्लेख है। यह श्राबक जीवन की उत्कृष्ट साधना है। पडिमाओं का वर्णन दशाश्रुतस्कंध सूत्र की छठी दशा में विस्तार से किया गया है। इस विषय पर लेखकों ने स्वतन्त्र विचार भी किया है, अतः यहाँ संक्षिप्त परिचय मात्र ही प्रस्तुत किया जाता है।

अभिग्रह विशेष को पडिमा या प्रतिमा कहते हैं। श्रावक की ११ और साधु के लिए मुख्य १२ पडिमाएँ कही गयी हैं। श्रावक की ग्यारह पडिमाएँ निम्न प्रकार हैं—

१. **दर्शन पडिमा** : निर्दोष सम्यग्दर्शन का पालन करना।

२. **व्रत पडिमा** : निरतिचार सम्यक् रूप से श्रावक व्रतों की आराधना करना।

३. **सामायिक पडिमा** : त्रिकाल सामायिक का अभ्यास करना।

४. **पौषध पडिमा** : प्रतिमास पर्वतिथि के छः पौषध करना।

५. **एक रात्रिक पडिमा** : इसमें अस्नान आदि पाँच बोलों का पालन करते हुए जघन्य एक दो तीन दिन, उत्कृष्ट पाँच मास तक विचरता है।

६. **ब्रह्मचर्य पडिमा** : पूर्वोक्त नियमों के साथ इसमें दिन रात पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। इसका उत्कृष्ट काल ६ मास का है।

७. **संचित आहार वर्जन पडिमा** : पूर्व पडिमा के नियमों का पालन करते हुए सचित्ताहार का त्याग रखना। इसका उत्कृष्ट काल ७ मास है।

८. **आरम्भ त्याग पडिमा** : इसमें स्वयं आरम्भ करने का त्याग होता है। इसका उत्कृष्ट काल ८ मास है।

९. **प्रेष्य पडिमा** : इसमें पडिमाधारी दूसरे से आरम्भ करवाने का त्याग रखता है। इसका उत्कृष्ट काल नव मास का कहा गया है।

१०. **उद्दिष्ट त्याग पडिमा** : इस पडिमा में अपने उद्देश्य से किये हुए आरंभ का भी साधक त्याग करता है। शिर पर शिखा रखता या क्षुरमुण्डन करता है। इसका उत्कृष्ट काल दस मास का है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

११. **श्रमण भूत पडिमा** : इसमें श्रमण निर्ग्रन्थों के धर्म का पालन किया जाता है। वह साधु वेष में रहकर अपनी ज्ञाति के कुल में भिक्षाचर्या लेकर विचरता है। पूछने पर अपना परिचय श्रमणोपासक रूप से देता है। इसका काल ११ मास का है।

जघन्य हर प्रतिमा का एक दिन, दो दिन या तीन दिन का साधना काल माना गया है। तप आदि का विशेष वर्णन मूल सूत्र में उपलब्ध नहीं होता। पडिमा-साधन से साधु जीवन में प्रवेश सरलता से हो सकता है।

इस प्रकार जीवन-सुधार के पश्चात् श्रावक मरण-सुधार का लक्ष्य रखता और उसके लिए अपच्छिम मारणांतिक संलेखना द्वारा जीवन निरपेक्ष होकर पूर्ण समाधि के साथ देह-विसर्जन करता है। यही श्रावक धर्म की साधना का संक्षिप्त परिचय है।

श्रावक प्रथम महारम्भी से अल्पारम्भी-अल्प परिग्रही होकर अनारंभी-अपरिग्रही जीवन की साधना में अग्रसर होता हुआ आत्मशक्ति का अधिकारी बनता है। श्रमण की तरह उसका लक्ष्य भी आरम्भ-परिग्रह से अलग होकर शुद्ध बुद्ध निज स्वरूप को प्राप्त करता है।

श्रावक-गीतिका

☐ डॉ० नरेन्द्र भानावत

श्रद्धा, ज्ञान, क्रियारत श्रावक।

जिसके मन में प्यार उमड़ता,
वाणी में माधुर्य छलकता,
चर्या में देवत्व झलकता,
सरवर में शतदल गुणधारक।
श्रद्धा, ज्ञान, क्रियारत श्रावक ।।१।।

व्रत-नियमों में जो सुदृढ़, स्थिर,
चाहे आवें संकट फिर-फिर,
वत्सल भावी, परहित-तत्पर,
दीन-दुःखी दलितों का पालक।
श्रद्धा, ज्ञान, क्रियारत श्रावक ।।२।।

न्याय-नीति से करता अर्जन,
मर्यादित इच्छामय जीवन,
हिंसा, झूठ, स्तेय का वर्जन,
निर्व्यसनी संयम-संवाहक।
श्रद्धा, ज्ञान, क्रियारत श्रावक ।।३।।

जो समाज की धड़कन सुनता,
नग्न मनुजता हित पट बुनता,
शोषण-उत्पीड़न से लड़ता,
सत्य, अहिंसा, समता-साधक।
श्रद्धा, ज्ञान, क्रियारत श्रावक ।।४।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org